Indian J.Soc & Pol. 03(03):2016:97-98 **ISSN 2348-0084 (PRINT)**
(Special Print Issue: September, 2016) **ISSN 2455-2127(ONLINE)**

नीति वाक्यामृत में न्यायिक व्यवस्था

विष्णुचन्द्र त्रिपाठी[1]
[1]एसो0प्रो0 / अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग,आर0एस0के0डी0पी0जी0कालेज,जौनपुर

ABSTRACT

आचार्य सोमदेवसूरि का प्रादुर्भाव ऐसे काल में हुआ था जब हिन्दू राज्य का सूर्य अस्तोन्मुख था। हर्षवर्धन के अनन्तर कोई भी ऐसा हिन्दू राजा नहीं हुआ जो समस्त देश अथवा उसके अधिकांश भाग को एक केन्द्रीय सत्ता के अन्तर्गत कर सके। इसी कारण हर्ष को भारत का अन्तिम साम्राज्य निर्माता कहा जाता है। हर्ष के बाद हिन्दू राज्य की सत्ता तो रही किन्तु सुदृढ़ केन्द्रीय शक्ति का नितान्त अभाव हो गया। देश सैकड़ो छोट–छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। इसी राजनीतिक अव्यवस्था के चलते यवनों ने भारत की पावन भूमि पर अधिकार कर लिया। इसी राजनीति अवस्था के युग में सोमदेवसूरि का अविभवि हुआ। उस काल में भारतीय नरेशों का पथ प्रर्दशन करने वाला कोई राजनीति का प्रकाण्ड विद्वान नहीं था। इस अभाव की पूर्ति आचार्य सोमदेव ने की। उन्होनें विभ्रान्त भारतीय नरेशों के पथ प्रदर्शनार्थ राजशास्त्र के अमर ग्रन्थ नीतिवाक्यामृतम की रचना की। आचार्य कौटिल्य द्वारा प्रवाहित राजदर्शन की पुनीत धारा कामन्दक के पश्चात अवरूद्ध हो गयी थी। आचार्य सोमदेव ने राजदर्शन की इस अवरूद्ध धारा को पुनः प्रवाहित किया। जिससे तत्कालीन राजाओं ने अपने कर्तव्यों एवं आदर्शो का ज्ञान प्राप्त किया तथा राष्ट्रोत्थान का पुनीत संकल्प ग्रहण किया तथा आने वाले समय के लिए प्रेरणा का अधार बना। उन्होनें राजनीति के व्यावहारिक पक्ष पर अधिक बल दिया। राजतंत्र के प्रबल पोषक होते हुए भी आचार्य ने राजा को निरंकुश नहीं बनाया। उनके राजतंत्र में प्रजातंत्र की आत्मा पूर्णरूपेण परिलक्षित होती है। आचार्य ने राजा को माता–पिता के समान बताया है। राजा को अपनी प्रजा का पालन पुत्रवत करना चाहिए तथा न्याय के पथ का अनुसरण करने का भी निर्देश दिया है। नीतिवाक्यामृतम का आधार न्याय व्यवस्था का प्राण स्वरूप है।

***KEY WORDS:** प्राग राजनैतिक दर्शन, न्याय, नीतिवाक्यामृत*

निष्पक्ष न्याय करना तथा दुष्टों का दमन करना राजा का प्रमुख कर्तव्य था। वह न्याय का स्रोत था । मनु का कथन है कि जो राजा अदण्डनीय को दण्ड देता है और दण्डनीय को दण्ड नहीं देता वह नरकगामी होता है। आचार्य शुक्र ने राजा के आठ कर्तव्यो में दुष्टनिग्रह को भी प्रधान कर्तव्य माना है। महाभारत के अनुसार न्याय व्यवस्था का यदि उचित प्रबन्ध न हो तो राजा को स्वर्ग तथा यश की प्राप्ति नहीं हो सकती। अतः निष्पक्ष न्याय राजा को यश एवं स्वर्ग प्रदान करने वाला प्रजा को सुख एवं शांति प्रदान करने वाला होता है। आचार्य सोमदेव भी इसी प्राचीन परम्परा के अनुयायी थे। उनका कथन है कि जब राजा यम के समान होकर अपराधियों को दण्ड देता है तो प्रजा अपनी मर्यादा में स्थिर रहती है तथा राजा को धर्म, अर्थ, कामादि पुरूषार्थो की प्राप्ति होती है। अन्यत्र आचार्य ने लिखा है कि जब राजा न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करता है तो तब सम्पूर्ण दिशा में प्रजा को अभिलाषित फल प्रदान करने वाली होती है।

प्रशासन में न्याय के महत्व का वर्णन करने के साथ ही आचार्य सोमदेव का यह भी कथन है कि जो राजा न्यायपूर्वक शासन नहीं करता वह प्रजापीड़ असन्तोष का दोषी होता है और इसके परिणामस्वरूप वह नष्ट हो जाता है। अतः न्याय व्यवस्था शासन के स्थायित्व का मूलाधार है।

राज्य में शांति एवं व्यवस्था की स्थापना के लिए न्याय व्यवस्था आवश्यक है। निष्पक्ष न्यायालय नागरिकों में राजभक्ति एवं विश्वास उत्पन्न करते है और उनके अधिकारों की रक्षा करते है। यद्यपि सोमदेव ही निष्पक्ष न्याय की स्थापना एवं महत्व पर अत्यधिक बल दिया है किन्तु न्यायालयों के संगठन तथा न्यायधीशों की योग्यता आदि के संबंध में नीतिवाक्यामृतम अधिक सामग्री उपलब्ध नहीं होती है। अर्थशास्त्र में दीवानी तथा फौजदारी के न्यायालयों का स्पष्ट उल्लेख है किन्तु नीतिवाक्यामृतम में इसका कोई उल्लेख नहीं है। न्याय प्रणाली के शिखर पर राजा का न्यायालय था जो राजधानी में स्थापित था। इस न्यायालय को सोमदेव ने सभा तथा इसके सदस्यों को सभ्य कहा है। इस सभा का सभापति स्वयं राजा होता था। जो इन सभ्यों की सहायता से न्याय करता था। सभा में कितने सभा रूप होते थे इस विषय में आचार्य ने कुछ भी नहीं लिखा है। प्राचीन नीतिशास्त्र के ग्रन्थों में भी न्यायालय के लिए सभा

1.Corresponding Author

तथा उसके सदस्यों के लिए सभ्य शब्द का प्रयोग किया गया है और सोमदेव ने भी इन्हीं शस्त्रों को अपनाया है। इस प्रकार आचार्य सोमदेव प्राचीन न्यायालय व्यवस्था के समर्थक प्रतीत होते है।

सभ्यों की योग्यता एवं नियुक्ति–

नीतिवाक्यामृतम में सभा के सदस्यों की योग्यता के संबंध में कुछ प्रकाश डाला गया है। सभा के सदस्य सूर्य के समान प्रकाश करने वाली प्रतिभा से युक्त होनी चाहिए। जिस प्रकार सूर्य अंधकार को दूर करके प्रकाश का संचार करता है उसी प्रकार सभ्यों को निष्पक्ष भाव से अपराधी के दोषो पर विचार करके उसे राजा के समक्ष प्रकाशित करना चाहिए। इसके अतिरिक्त सभ्यों को धर्मज्ञ, शास्त्रज्ञ, व्यवहार का ज्ञाता तथा अपने उत्तरदायित्वों का पालने करने वाला होना चाहिए। आचार्य सोमदेव ने लिखा है जिन सभ्यों ने स्मृति प्रतिपादित व्यवहार का न तो अध्ययन द्वारा ज्ञान ही प्राप्त किया है और न धर्मश पुरूषों के सत्संग से उन व्यवहारों का श्रवण ही किया है और जो राजा से ईर्ष्या व वाद–विवाद करते है वे राजा के शत्रु है सभ्य नहीं। आगे आचार्य यह भी लिखते है कि जिस राजा की सभा में लोभ और पक्षपात के कारण अयवार्थ कहने वाले सभासद होगें वे निश्चय ही राजा (सभापति) के मान व अर्थ की हानि करेंगे। अतः सभ्यों को कानून का पूर्ण ज्ञाता निष्पक्ष, एवं निलोभ होना चाहिए। आचार्य का कथन है कि ऐसी सभा मे विवाद को प्रस्तुत नहीं करना चाहिए जहां स्वयं सभापति प्रतिवादी हो। सभ्य और सभापति के असामंजस्य से विजय नहीं हो सकती। जिस प्रकार वलिष्ठ कुत्ता भी अनेक बकरों के द्वारा परास्त कर दिया जाता है उसी प्रकार प्रभावशाली वादी विरोधी द्वारा परास्त कर दिया जाता है।

अपराध की परीक्षा किये बिना दण्ड देने का निषेध–

न्यायालय द्वारा उचित परीक्षा के बिना किसी भी व्यक्ति को दण्ड नहीं देना चाहिए। न्याय के हित मे यह आवश्यक है कि पहले अभियुक्त का अपराध सिद्ध हो, तब उसे दण्डित किया जायें अपने क्रोध को शान्त करने अथवा बदला लने की भावना से किसी भी व्यक्ति को दण्ड देना राजा के लिए सर्वथा अनुचित है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र तथा अन्य नीतिशास्त्र के ग्रन्थों में कानून के चार प्रमुख आधार बताये गये है। 1 धर्म 2 व्यवहार 3 चरित्र 4 राजशासन।1 इन्हीं आधारों के अनुसार न्याय किया जाता था। राजा संस्था के और अधिक विकसित हो जाने पर न्याय और मीमांसा को भी कानून का आधार माना जाने लगा। इसीलिए याज्ञवलक्य में ऋत, श्रुति, स्मृति, शिष्टाचार, व्यवहार, न्याय, मीमांसा और राजकीय आज्ञाओं को कानून का आधार माना है। याज्ञवल्कय स्मृति, भारतीय राज्य संस्थाओं के उस स्वरूप को प्रकट करती है जबकि कानून का रूप भलीभांति विकसित हो चुका है। शुक्र ने देश, जाति, जनपद, कुल व श्रेणी के कानूनों के अनुसार न्याय करने का आदेश दिया। इसके विरूद्ध आचरण करने से प्रजा में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। मनु तथा अन्य धर्मशास्त्रो के रचयिताओ ने इस सिद्धान्त को आवश्यक बतलाया है कि विवादों का निर्णय जनपद, जाति, श्रेणी तथा कुल के परम्परागत धर्मो के अनुसार होना चाहिए। सोमदेव ने इस संबंध में कुछ नहीं लिखा है। सम्भवत वे प्राचीन परम्परा को ही मानते थे। इसी कारण उन्होनें इस संबंध में अपने विचार व्यक्त करना आवश्यक नहीं समझा। इसी प्रकार न्यायालयों की कार्यविधि के संबंध में भी उनके ग्रन्थ में कोई स्पष्ट निर्देश नहीं मिला। इसका कारण यही है कि न्यायालयों की कार्य प्रणाली इतनी सरल व सुनिश्चित थी कि प्रत्येक व्यक्ति उसमें भलिभांति परिचित था। अतः जन साधारण बातों का वर्णन करना सोमदेव ने आवश्यक नहीं समझा।

इस प्रकार सोमदेव का नीतिवाक्यामृतम वर्तमान युग की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपूर्व ग्रन्थ है। इसमें वर्णित न्यायिक व्यवस्थाओं में आधुनिक युग की न्यायिक व्यवस्था के लिए एक सुदृढ़ आधार प्रस्तुत करती है। ग्राम तथा नगर के निर्णयों के विरूद्ध राजा के न्यायालय में अपील हो सकती थी। इस प्रकार नीतिवाक्यामृतम में पुनरावेदन अथवा अपील की व्यवस्था का भी वर्णन है। राजा का निर्णय अन्तिम होता था और उस निर्णय के विरूद्ध कोई अपील नहीं हो सकती क्योंकि राजा का न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय था। उस निर्णय के विरूद्ध यदि कोई व्यक्ति किसी प्रकार का असन्तोष प्रकट करता था तो उसे उसके लिए मृत्युदण्ड का विधान था। आचार्य का मत था कि व्यक्ति और समाज में आध्यात्मिक दृष्टिकोण का उल्लेख करके ही देश में स्थायी शांति स्थापित की जा सकती है। किन्तु विवेकी राजा को काम, क्रोध और अज्ञान के वशीभूत होकर कभी दण्ड नहीं देना चाहिए। यदि अपराधियों को दण्ड नहीं दिया जायेगा तो समाज में अव्यवस्था फैल जाएगी। अतः न्यायी राजा को अपराध के अनूकुल दण्ड देकर प्रजा की वृद्धि करनी चाहिए।

संदर्भ

मनुः मनुस्मृति

शुक्र : शुक्रनीति

वेदव्यास : महाभारत

नीतिवाक्यामृतम